1947G The Basis of Prakarat and Sanskrit Panch Sangrah

Prakrat aur Sanskrit Panch Sangrah tatha unka adhar (In Premi Abhinandan Granth, 1947?)

प्राकृत और संस्कृत पंचसंग्रह तथा उनका आधार

श्री हीरालाल जैन सिद्धान्तशास्त्री

वर्तमान जैन साहित्य में 'पंचसंग्रह' नाम के तीन ग्रन्थ उपलब्ध हैं, जिनमें दो दिगम्बर ग्रंथ हैं और एक श्वेताम्बर। श्वेताम्बर पंचसंग्रह चन्द्रर्षि महत्तर ने पूर्वाचार्यों द्वारा रचे गये शतक, सप्ततिका, कषायप्राभृत, सत्कर्मप्राभृत और कर्म-प्रकृति नामक पाँच ग्रन्थों के आधार पर प्राकृत गाथाओं में रचा है और उसकी एक संस्कृत टीका भी स्वयं रची है, जो कि मुक्ताबाई ज्ञानमंदिर डभोइ (गुजरात) से प्रकाशित हो चुकी है। दोनों दिगम्बर पंचसंग्रहों में से संस्कृत पंच-संग्रह अमितगति आचार्यकृत है और 'माणिकचंद ग्रन्थमाला' से प्रकाशित हो चुका है। प्राकृत पंचसंग्रह किसी अज्ञात आचार्य की रचना है और यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है। इन दोनों दिगम्बर पंचसंग्रहों के मिलान करने पर यह बात स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाती है कि प्राकृत पंचसंग्रह को सामने रखकर ही आचार्य अमितगति ने संस्कृत पंचसंग्रह की रचना की है। दोनों ही पंचसंग्रहों में १ जीवसमास, २ प्रकृतिसमुत्कीर्तन, ३ कर्मबन्धस्तव, ४ शतक और ५ सप्ततिका नाम के पाँच प्रकरण हैं। प्रथम के तीन प्रकरणों में अपने नामों के अनुरूप विषयों की चर्चा की गई है। चौथे और पाँचवें प्रकरणों के नाम दोनों ही पंचसंग्रहकारों ने किस दृष्टि से रखे हैं, यह बात सहसा ज्ञात नहीं होती—विशेषकर उस दशा में जब कि दोनों ही पंचसंग्रहों में उक्त प्रकरणों की पद्यसंख्या क्रमशः ३७५; ५१८ और ४५०; ५०२ है। आगे चल कर उनके नामकरण पर विशेष प्रकाश डाला जायगा।

(१) संस्कृत पंचसंग्रह का आधार क्या है?

सर्वप्रथम यहाँ कुछ ऐसे अवतरण दिये जाते हैं, जिनसे दोनों दिगम्बर पंचसंग्रहों का आधाराधेयपना निर्विवाद माना जा सके।

दिगम्बर प्राकृत और संस्कृत पंचसंग्रह की तुलना

प्रथम जीव-समास प्रकरण में से—

१

छद्दव्व णव पयत्थे दव्वाइ चउव्विहेण जाणंते।
वंदित्ता अरहंते जीवस्स परूवणं वोच्छं ॥१॥ प्राकृतपंचसं०
ये षट् द्रव्याणि बुध्यन्ते द्रव्यक्षेत्रादिभेदतः।
जिनेशांस्तांस्त्रिधा नत्वा करिष्ये जीवरूपणम् ॥३॥ संस्कृतपंचसं०

२

सिक्खा किरिओवएसा आलावगाही मणोवलंबेण।
जो जीवो सो सण्णी तव्विवरीओ असण्णी य ॥१७३॥ प्राकृतपंच०
शिक्षालापोपदेशानां ग्राहको यः समानसः।
सः संज्ञी कथितोऽसंज्ञी हेयादेयाविवेचकः ॥३१९॥ संस्कृतपंच०

द्वितीय प्रकृति समुत्कीर्तन प्रकरण में से--

१

पयडिविबंधणमुक्कं पयडिसरूवं विसेसदेसयरं ।
पणविय वीरजिणिंदं पयडिसमुक्कित्तणं वुच्छं ॥१॥प्राकृतपंच०

यो ज्ञात्वा प्रकृतीर्देवो दग्धवान् ध्यानवह्निना ।
तं प्रणम्य महावीरं क्रियते प्रकृतिस्तवः ॥१॥संस्कृतपंच०

२

साइयरं वेदा वि य हस्सादि चउक्क पंच जाईओ ।
सठाणं संघडणं छ छक्क चउक्क आणुपुव्वी य ॥११॥
गइचउ दो य सरीरं गोयं च य दोण्णि अंगवंगा य ।
दह जुवलाणि तसाई गयणगइदुगं विसिट्ठपरिवत्ता ॥१२॥ प्राकृतपंच०

द्वे वेद्ये गतयो हास्यचतुष्कं द्वे नभोगती ।
षट्के संस्थान--संहत्योर्गोत्रे वैक्रियिकद्वयम् ॥४५॥
चतुष्कमानुपूर्वीणां दश युग्मानि जातयः ।
औदारिकद्वयं वेदा एताः सपरिवृत्तयः ॥४६॥ संस्कृतपंच०

तृतीय कर्मबन्धस्तव प्रकरण में से--

१

कंचणरूप्पदवाणं एयत्तं जेम अणुपवेसो त्ति ।
अण्णोण्णपवेसाणं तह बंधं जीवकम्माणं ॥२॥ प्राकृतपंच०

परस्परप्रदेशानां प्रवेशो जीवकर्मणोः ।
एकत्वकारको बंधो रुक्म-कांचनयोरिव ॥६॥ संस्कृतपंच०

२

छिज्जइ पढमं बंधो किं उदओ किंच दो वि जुगवं किं ।
किं सोदएण बंधो किं वा अण्णोदएण उभएणं ॥६६॥
सांतरणिरंतरो वा किं वा बंधो हवेज्ज उभयं वा ।
एवं णवविहपण्हं कमसो वोच्छामि एयं तु ॥६७॥ प्राकृतपंच०

किं प्राक् विच्छिद्यते बन्धः किं पाकः किमुभौ समम् ।
किं स्वपाकेन बंधोऽन्यपाकेनोभयथापि किम् ॥७८॥
सान्तरोऽनंतरः किं किं बंधो द्वेधा प्रवर्तते ।
इत्येवं नवधा प्रश्नक्रमेणास्त्येतदुत्तरम् ॥७९॥ संस्कृतपंच०

चतुर्थ शतक प्रकरण में से--

१

सुणह इह जीवगुणसण्णिएसु ठाणेसु सारजुत्ताओ ।
वोच्छं कदिवइयाओ गाहाओ दिट्ठिवादाओ ॥३॥ प्राकृतपंच०
दृष्टिवादादपोद्धृत्य वक्ष्यन्ते सारयोगिनः ।
श्लोका जीवगुणस्थानगोचराः कतिचिन्मया ॥२॥ संस्कृतपंच०

२

तिरियगईए चोद्दस हवंति सेसासु जाण दो दो दु ।
मग्गणठाणस्सेवं णेयाणि समासठाणाणि ॥६॥ प्राकृतपंच०
तिर्यग्गतावशेषाणि द्वे संज्ञिस्थे गतित्रये ।
जीवस्थानानि नेयानि सन्त्येवं मार्गणास्वपि ॥५॥ संस्कृतपंच०

३

उम्मग्गदेसओ सम्मग्गणासओ गूढहिययमाइल्लो ।
सढसीलो य ससल्लो तिरियाउ णिबंधए जीवो ॥२०७॥ प्राकृतपंच०
उन्मार्गदेशको मायी सशल्यो मार्गदूषकः ।
आयुरर्जति तैरश्चं शठो मूढो दुराशयः ॥७८॥ संस्कृतपंच०

४

पयडी एत्थ सहावो तस्स अणासो ठिदी होज्ज ।
तस्स य रसोऽणुभाओ एत्तियमेत्तो पदेसो दु ॥५१०॥ प्राकृतपंच०
स्वभावः प्रकृतिर्ज्ञेया स्वभावादच्युतिः स्थितिः ।
अनुभागो रसस्तासां प्रदेशोंऽशावधारणम् ॥३६६॥ संस्कृतपंच०

५

एसो बंधसमासो पिंडक्खेवेण वण्णिओ किं चि ।
कम्मप्पवादसुयसायरस्स णिस्संदमेत्तो दु ॥५१६॥
बंधविहाणसमासो रइओ अप्पसुयमंदमदिणा हु ।
तं बंध-मोक्खकुसला पूरेदूणं परिकहेंतु ॥५१७॥ प्राकृतपंच०
कर्मप्रवादाम्बुधिबिन्दुकल्पश्चतुर्विधो बंधविधिः स्वशक्त्या ।
संक्षेपतो यः कथितो मयाऽसौ विस्तारणीयो महनीयबोधैः ॥३७३॥ संस्कृतपंच०

पंचम सप्ततिका प्रकरण में से--

१

णमिऊण जिणिंदाणं वरकेवललद्धिसुक्खपत्ताणं ।
वोच्छं सत्तरिभंगं उवइट्ठं वीरणाहेण ॥१॥

सिद्धपदेहिं महत्थं बंधोदयसंतपयडिठाणाणि ।
वोच्छं सुण संखेवेण णिस्सदं दिट्ठिवादादो ॥२॥ प्राकृतपंच०
नत्वाऽहमर्हतो भक्त्या घातिकल्मषघातिनः ।
स्वशक्त्या सप्ततिं वक्ष्ये बंधभेदावबुद्धये ॥१॥
बन्धोदयसत्त्वानां सिद्धपदैर्दृष्टिवादपाथोधेः ।
स्थानानि प्रकृतीनामुद्धृत्य समासतो वक्ष्ये ॥२॥ संस्कृतपंच०

२

इगिवीसं पणुवीसं सत्तावीसट्ठवीसमुगुतीसं ।
एए उदयट्ठाणा देवगइसंजुया पंच ॥१८१॥
२१।२५।२७।२८।२९। प्राकृतपंच०
अस्त्येकपंचसप्ताष्टनवाग्रा विंशतिः क्रमात् ।
नाम्नो दिवौकसां रीतावुदये स्थानपंचकम् ॥२०९॥
२१।२५।२७।२८।२९। संस्कृतपंच०

३

अह सुठिय सयलजयसिहर अरयणिरुवमसहावसिद्धिसुखं ।
अणिहमव्वाबाहं तिरयणसारं अणुहवंति ॥५००॥ प्राकृतपंच०
रत्नत्रयफलं प्राप्ता निर्बाधं कर्मवर्जिताः ।
निविशंति सुखं सिद्धास्त्रिलोकशिखरस्थिताः ॥४७७॥ संस्कृतपंच०

उपरिलिखित अवतरणों से यह बात तो पूर्ण रूप से निश्चित हो जाती है कि अमितगति के पंचसंग्रह का आधार प्राकृत पंचसंग्रह है । यद्यपि यहाँ यह आशंका की जा सकती है कि संभव है कि संस्कृत पंचसंग्रह को सामने रखकर प्राकृत पंचसंग्रह की रचना की गई हो, तथापि इसके विरुद्ध कितने ही प्रमाण हैं, जिनसे प्राकृत पंचसंग्रह ही पूर्वकालीन सिद्ध होता है । उनमें से सबसे बड़ा प्रमाण धवला टीका में इस ग्रंथ की गाथाओं का 'उक्तं च' के रूप में पाया जाता है । इतना ही नहीं, एक स्थल[1]पर तो धवलाकार ने 'तह जीवसमासए वि उत्तं' कह कर 'छप्पंचणव विहाणं' इत्यादि गाथा उद्धृत की है, जो कि स्पष्टतः अपनी अन्य गाथाओं के समान **प्राकृत पंचसंग्रह** के **जीवसमासनामक** प्रथम प्रकरण की १५९वीं गाथा है ।.

(२) शतक और सप्ततिका नाम क्यों ?

संस्कृत पंचसंग्रह की रचना **प्राकृत पंचसंग्रह** के आधार पर हुई है, इतना स्पष्टतः ज्ञात हो जाने पर भी यह सन्देह तो अवशिष्ट रह ही जाता है कि पंचसंग्रह के चौथे प्रकरण का नाम **शतक** और पाँचवें का नाम **सप्ततिका** क्यों रक्खा गया? भारतीयसाहित्य में पद्यसंख्या के आधार पर ग्रन्थ के नाम रखने की प्राचीन परिपाटी अवश्य रही है मगर पंचसंग्रह के इन दोनों ही प्रकरणों की पद्यसंख्या इतनी अधिक है कि सहसा वैसी कल्पना करने का विचार मन में नहीं उठता ।

[1] देखो षट्खंडागम, पुस्तक ४, पृष्ठ ३१५, उक्त पृष्ठ पर 'जीवसमासाए' पाठ अशुद्ध छपा है, 'जीव-समासए' पाठ ही वहां होना चाहिए ।—लेखक

पर प्राकृत पंचसंग्रह का गंभीरता के साथ सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन करने पर कुछ गाथाएँ ऐसी अवश्य प्रतीत हुईं, जो अर्थ का पिष्ट-पेषण या सामान्यतः निरूपित वस्तु का विशेष निरूपण करने वाली थीं। इन दोनों कारणों से हमने यह कल्पना की है कि संभव है कि इन दोनों प्रकरणों की मूल गाथाएँ क्रमशः १०० और ७० रही हों, और इसी कारण उन प्रकरणों के क्रमशः 'शतक' और 'सप्ततिका' नाम पड़े हों। इस कल्पना को सामने रखकर जब हमने श्वेताम्बर संस्थाओं से मुद्रित 'सतक' और 'सत्तरी' नामके दो प्रकरणों से मिलान किया तो इस बात में कोई सन्देह नहीं रह गया कि उक्त प्रकरणों की क्रमशः १०० और ७० गाथाओं को आधार बनाकर रचे गये होने के कारण ही पंचसंग्रहकार ने कृतज्ञता प्रकाशनार्थ उन दोनों प्रकरणों के वे ही नाम रख दिये हैं।

यहाँ उक्त दोनों प्रकरणों में से कुछ अवतरण दिये जाते हैं, जिनसे उक्त कल्पना असंदिग्ध सिद्ध होती है। प्राकृत पंचसंग्रहकार ने उक्त दोनों प्रकरणों को ज्यों-का-त्यों अपना लिया है और दोनों ही प्रकरणों की समस्त गाथाओं पर भाष्यगाथाएँ रची हैं, जिसका विशद ज्ञान तो मूलग्रन्थ के प्रकाश में आने पर ही हो सकेगा। यहाँ 'शतक' और 'सप्ततिका' प्रकरण की गाथाओं को **मूलगाथा** और पंचसंग्रहकार द्वारा रचित गाथाओं को **भाष्यगाथा** नाम देकर उल्लेख किया जाता है:—

१ शतक प्रकरण में से—

१

मूलगाथा—एयारसेसु ति त्ति य दोसु चउक्कं च वारमेक्कम्मि।
जीवसमासस्सेदे उवओगविही मुणेयव्वा ॥२०॥

इस गाथा का पंचसंग्रह के इस प्रकरण में २०वाँ स्थान है और शतक प्रकरण में ६वाँ। इसके अर्थ-स्पष्टीकरण के लिए प्राकृत पंचसंग्रहकार ने १९ भाष्यगाथाएँ रची हैं, जिनमें से प्रारंभिक दो गाथाएँ यहाँ दी जाती हैं:—

भाष्यगाथा—मइसुअ अण्णाणाइं अचक्खु एयारसेसु तिण्णेव।
चक्खूसहिया तेच्चिय चउरक्खे असण्णिपज्जत्ते ॥२१॥
मइ सुय ओहिदुगाइं सण्णि अपज्जत्तएसु उवओगा।
सव्वे वि सण्णिपुण्णे उवओगा जीवठाणेसु ॥२२॥

विषय के जानकार पाठक जान सकेंगे कि इन दो गाथाओं में मूलगाथा के 'एयारसेसु तित्तिय दोसु चउक्कं च' इतने अंश का ही अर्थ व्याख्यात हुआ है।

२

मूलगाथा—अविरय-अंता दसयं विरयाविरयंतिया दु चत्तारि।
छच्चेव पमत्तंता एया पुण अप्पमत्तंता ॥३०९॥
भाष्यगाथा—विदियकसायचउक्कं मणुयाऊ मणुयदुग य उराल।
तस्स य अंगोवंगं संघयणाई अविरयस्स ॥३१०॥
तइयकसायचउक्कं विरयाविरयम्मि बंधवोच्छिण्णो।
साइयरमरइ सोयं तह चेव य अथिरमसुहं च ॥३११॥
अज्जसकित्ती य तहा पमत्तविरयम्हि बंधवोच्छेदो।
देवाउयं च एयं पमत्त-इयरम्हि णायव्वो ॥३१२॥

इन तीन भाष्यगाथाओं में से प्रथम भाष्यगाथा द्वारा मूलगाथा के प्रथम चरण का, दूसरी गाथा के पूर्वार्ध से द्वितीय चरण का, और उत्तरार्ध तथा तीसरी गाथा के पूर्वार्ध से तीसरे चरण का, तथा तीसरी गाथा के ही उत्तरार्ध से मूल गाथा के चौथे चरण का अर्थ-व्याख्यान किया गया है। इस प्रकार एक मूल गाथा का तीन भाष्यगाथाओं में अर्थ स्पष्ट किया गया है। इस तरह उक्त गाथाओं में मूल गाथाओं और भाष्यगाथाओं का भेद स्पष्ट दृष्टिगोचर हो जाता है।

२ सत्तरी प्रकरण में से--

१

मूलगाथा--वावीसमेक्कवीसं सत्तारस तेरसेव णव पंच।
चउ तिय दुयं च एयं बंधट्ठाणाणि मोहस्स ॥२५॥

भाष्यगाथा--मिच्छम्मि या वावीसा मिच्छा सोलह कसाय वेदो य।
हस्सा जुयलेक्कंणिदा भएण विदिए दु मिच्छसंदूणा ॥२६॥
पढमचउक्केणित्थीरहिया मिस्से अविरयसम्मे य।
विदिएणूणा देसे छट्ठे तइऊण सत्तमट्ठे य ॥२७॥
अरइ-सोएणूणा परम्मि पुंवेय-संजलणा।
एगेगूणा एवं दह ट्ठाणा मोहबंधम्मि ॥२८॥

२

मूलगाथा--अट्ठसु पंचसु एगे एय दुय दस य मोहबंधगये।
तिय चउ णव उदयगदे तिय तिय पण्णरस संतम्मि ॥२६२॥

भाष्यगाथा--सत्त अपज्जत्तेसु य पज्जत्ते सुहुम तह य अट्ठसु य।
वावीसं बंधोदय संता पुण तिण्णि पढमिल्ला ॥२६३॥
पंचसु पज्जत्तेसु पज्जत्तयसण्णिणामगं वज्ज।
हेट्ठिम दो चउ तिण्णि य बंधोदयसंतठाणाणि ॥२६४॥
दस णव पण्णरसाई बंधोदयसंतपयडिठाणाणि।
सण्णिपज्जत्तयाणं संपुण्णा इत्ति बोहव्वा ॥२६५॥

विषय से परिचित पाठक भलीभांति जान सकेंगे कि एक-एक मूलगाथा के अर्थ को किस प्रकार तीन-तीन भाष्यगाथाओं द्वारा स्पष्ट किया गया है।

इस प्रकार यह मानने में कोई भी संदेह नहीं रह जाता है कि प्राकृत पंचसंग्रहकार ने मूल प्रकरणों के नाम को अक्षुण्ण रखने के लिए ही वही के वही नाम दे दिये हैं और ये दोनों प्रकरण-ग्रन्थ ही पंचसंग्रह के चौथे-पांचवें संग्रह के आधार हैं।

(३) शेष अधिकारों के आधारों की छान-बीन

प्राकृत पंचसंग्रह के प्रकृतिसमुत्कीर्तन नामक द्वितीय प्रकरण का आधार स्पष्टतः षट्खंडागम की प्रकृति-समुत्कीर्तन नाम की चूलिका है, जो कि मुद्रित षट्खंडागम के छठवें भाग में सन्निहित है। इस चूलिका के समस्त

सूत्रों को यहाँ ज्यों-का-त्यों उठाकर रख दिया गया है। केवल जहाँ-कहीं कहने मात्र को 'जं' या 'तं' में से कोई एक शब्द को छोड़ दिया गया है। इस विषय में यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि जिन्हें इसमें लेशमात्र भी संदेह हो, वे मूल से मिलान करके देख सकते हैं।

प्राकृत पंचसंग्रह के प्रथम जीवसमास और तृतीय कर्मप्रकृतिस्तव नामक प्रकरणों का आधार क्या है, यह अभी तक स्पष्टतः ज्ञात नहीं हो सका। संभव है कि ये दोनों प्रकरण प्राकृत पंचसंग्रह के कर्ता ने स्वतंत्र ही रचे हों और यह भी संभव हो सकता है कि इन दोनों प्रकरणों की बहुत सी गाथाएँ आचार्य-परंपरा से चली आ रही हों और प्राकृतपंच-संग्रहकार ने उन्हें सुव्यवस्थित रूप से इस ग्रन्थ में निबद्ध या संग्रह कर दिया हो; क्योंकि 'पंच संग्रह' इस नाम से उक्त बात की ध्वनि निकलती है। फिर भी इतना तो निर्विवाद कहा ही जा सकता है कि 'बंधस्वामित्व' और 'बंधविधान' ये दोनों खंड षट्खंडागम में आज भी उपलब्ध हैं और बहुत संभव है कि पंचसंग्रहकार ने इन दोनों के आधार पर इन दोनों प्रकरणों की स्वतंत्र पद्य-रचना की हो। इन दोनों प्रकरणों का सीधा संबंध किस-किस ग्रंथ से रहा है, यह बात अद्यापि अन्वेषणीय ही है।

(४) प्राकृत पंचसंग्रह का कर्त्ता कौन ?

प्रस्तुत ग्रन्थ के आधार-संबंधी इतनी छानबीन कर चुकने के बाद अब प्रश्न उठता है कि प्राकृत पंचसंग्रह का रचयिता या संग्रहकार कौन है ?

पर्याप्त अन्वेषण करने के बाद भी अभी तक उक्त ग्रन्थ के रचयिता के विषय में कुछ भी निर्णय नहीं किया जा सका, हालांकि दो-एक आचार्यों के अनुमान के लिए कुछ प्रमाण अवश्य मिले हैं; पर जब तक इस विषय के काफी स्पष्ट और पुष्ट प्रमाण नहीं मिल जाते तब तक उनके नाम का उल्लेख करना उचित नहीं।

(५) प्राकृत पंचसंग्रह का निर्माण-काल

यद्यपि जब तक ग्रन्थकार के नाम का निर्णय नहीं हो जाता है तब तक उसके रचना-काल का निर्णय करना भी कठिन कार्य ही है, तथापि एक बात तो सुनिश्चित ही है कि यह ग्रन्थ मूल 'शतक' प्रकरण के पीछे रचा गया है। मूल 'शतक' प्रकरण के रचयिता आचार्य **'शिवशर्म'** हैं, जैसा कि इस ग्रन्थ की चूर्णि बनानेवाले अज्ञात नामधेय आचार्य ने अपनी चूर्णि का प्रारंभ करते हुए लिखा है:—

'केण कयं सतग पगरणं ति ? शब्द-तर्क-न्यायप्रकरण-कर्मप्रकृतिसिद्धान्तविजाणएण अणेगवायसमालद्ध-विजएण शिवसम्मायरियणामधेज्जेण कयं ति। किं परिमाणं ? गाहापरिमाणेण सयमेत्तं।'

आचार्य शिवशर्म का समय यद्यपि अद्यावधि सुनिश्चित नहीं हो सका है, तथापि विद्वानों ने विक्रम की पाँचवीं शताब्दी में होने का अनुमान किया है। इसलिए शिवशर्म आचार्य के पश्चात् और धवला टीका के कर्ता आचार्य वीरसेन के पूर्व किसी मध्यवर्ती काल में प्राकृतपंचसंग्रह का निर्माण हुआ है, इतना अवश्य सुनिश्चित हो जाता है। धवला टीका की समाप्ति का काल शक सं० ७३८ है।

बौरासी, (मथुरा)]